

प्रथमा बैंक, हेड ऑफिस मुरादाबाद, इसके अध्यक्ष के माध्यम से

बनाम

विजय कुमार गोयल और एक अन्य

22 अगस्त, 1989

[ललित मोहन शर्मा और जे.एस. वर्मा, जे.जे.]

प्रादेशिक ग्रामीण बैंक अधिनियम, 1976: धारा 3- 'प्रादेशिक ग्रामीण बैंक' - क्या 'राज्य' संविधान के अनुच्छेद 12 के अंतर्गत' है।

भारत का संविधान, 1950: अनुच्छेद 12- प्रादेशिक ग्रामीण बैंक अधिनियम 1976 की धारा 3 के तहत अधिसूचित 'क्षेत्रीय ग्रामीण बैंक' क्या 'राज्य' है।

उत्तर प्रदेश लोक सेवा (न्यायाधिकरण) अधिनियम 1976: धारा 2 (बी)- 'लोक सेवक' - प्रादेशिक ग्रामीण बैंक का कर्मचारी - क्या 'सार्वजनिक सेवक' है।

प्रत्यर्थी, जो अपीलार्थी बैंक का कर्मचारी था, उसके खिलाफ स्थापित अनुशासनात्मक कार्यवाही के आधार पर सेवा से बर्खास्त कर दिया गया था। उसने इस आधार पर अनुशासनात्मक कार्यवाही की वैधता को चुनौती देते हुए एक मुकदमा दायर किया कि प्राकृतिक न्याय के सिद्धांतों के गंभीर उल्लंघन के कारण जांच दूषित थी। विचारण न्यायालय ने वाद को डिक्री किया। अपील में अतिरिक्त जिला न्यायाधीश द्वारा और दूसरी अपील में उच्च न्यायालय द्वारा डिक्री की पुष्टि की गई थी।

इस न्यायालय के समक्ष, अपीलार्थी ने तर्क दिया कि (i) पक्षकारों के मध्य स्वामी और सेवक के संबंध की प्रकृति को ध्यान में रखते हुए, प्रत्यर्थी की पुनर्नियुक्ति की डिक्री अवैध थी, और जैसा कि वाद बनाया गया था वह सम्पोशनीय नहीं था क्योंकि

प्रत्यर्थी का उपचार हर्जाने के लिए एक वाद था; (ii) वैकल्पिक रूप से, यदि प्रत्यर्थी को एक लोक सेवक के रूप में अभिनिर्धारित किया गया था ताकि वह सेवा में पुनर्नियुक्ति की मांग करने में सक्षम हो, तो यू.पी. लोक सेवा (न्यायाधिकरण) अधिनियम, 1976 के प्रावधानों को देखते हुए मुकदमे को खारिज कर दिया जाना चाहिए क्योंकि वह सम्पोशनीय नहीं है। और (iii) प्राकृतिक न्याय के सिद्धांतों का कोई उल्लंघन नहीं हुआ था।

संशोधनों के साथ डिक्री की पुष्टि करते हुए, इस न्यायालय ने, अभिनिर्धारित किया :

(1) उच्च न्यायालय यह अभिनिर्धारित करने में सही था कि चूंकि प्रतिवादी को दस्तावेज़ की जांच करने का पर्याप्त अवसर नहीं दिया गया था, वह अपना कारण दिखाने और प्रभावी ढंग से अपना बचाव करने में असमर्थ था। [938 सी]

(2) अपीलार्थी बैंक उत्तर प्रदेश लोक सेवा (न्यायाधिकरण) अधिनियम, 1976 की धारा 2 (बी) में 'सार्वजनिक सेवक' की परिभाषा के दायरे में नहीं आता है। इसका गठन प्रादेशिक ग्रामीण बैंक अधिनियम, 1976 की धारा 3 द्वारा प्रदत्त शक्ति का प्रयोग करते हुए किया गया है और सिंडी केट बैंक, एक राष्ट्रीयकृत बैंक द्वारा प्रायोजित किया गया है। हालांकि बैंक की कुल पूंजी का पंद्रह प्रतिशत उत्तर प्रदेश राज्य द्वारा योगदान किया गया है, लेकिन इसके पास कोई नियंत्रण शक्ति नहीं है, और यू.पी. अधिनियम की धारा 2(बी) में उल्लिखित कोई भी शर्त पूरी नहीं होती है। [939 जी]

(3) यू. पी. अधिनियम में प्रयुक्त अभिव्यक्ति के सीमित अर्थ में वादी-प्रत्यर्थी एक "लोक सेवक" नहीं है और मुकदमे पर विचार करने के लिए सिविल न्यायालय के अधिकार क्षेत्र पर यू पी अधिनियम द्वारा बार की बचाव याचिका को खारिज करने में निचली अदालतें सही हैं। [939 एच-940 ए]

(4) यह निर्धारित करने के लिए परीक्षण कि क्या कोई प्राधिकारी संविधान के अनुच्छेद 12 में राज्य की परिभाषा के अंतर्गत आता है स्थिति यह है कि क्या यह सरकार की साधन या एजेंसी है। जाँच इस बारे में नहीं होनी चाहिए कि न्यायिक व्यक्ति का जन्म कैसे हुआ है, बल्कि यह होनी चाहिए कि इसे अस्तित्व में क्यों लाया गया है। इसलिए, यह मायने नहीं रखता कि प्राधिकरण किसी कानून द्वारा बनाया गया है या किसी कानून के तहत। [940 सी]

अजय हसिया और अन्य बनाम खालिद मुजीब शेरावर्दी और अन्य [1981] 1 एस.सी.सी. 722, संदर्भित।

(5) अपीलार्थी बैंक के सम्बन्ध में उपयुक्त परिस्थितियों की परीक्षा इस अप्रतिरोध्य निष्कर्ष की ओर ले जाती है कि यह केंद्र सरकार का एक साधन है। ग्रामीण बैंकों की स्थापना करके केंद्र सरकार उनके माध्यम से संविधान के भाग IV के अनुच्छेद 38 और 48 के तहत अपने दायित्वों का निर्वहन करती है। (940 जी, 942 सी)

(6) प्रादेशिक ग्रामीण बैंक अधिनियम, 1976 के प्रावधान इस बात में संदेह की कोई गुंजाइश छोड़ते हैं कि प्रादेशिक ग्रामीण बैंक केंद्र सरकार के गहरे और व्यापक नियंत्रण में हैं और इसकी साधनता के रूप में स्थापित किया गए हैं और इसलिए, संविधान के अनुच्छेद 12 के भीतर 'राज्य' हैं। [943 ए]

(7) इस तर्क में कोई योग्यता नहीं है कि न्यायालय प्रत्यर्थी को सेवाओं को अपीलार्थी बैंक पर उसकी सेवा की बहाली के लिए डिक्री पारित करके बाध्य नहीं कर सकती हैं और जो कुछ किया जा सकता है वह उचित रूप से गठित मुकदमे में मुआवजे के रूप में राहत देना है। [943 बी]

केंद्रीय अंतर्देशीय जल परिवहन निगम लिमिटेड बनाम ब्रोजो नाथ गांगुली, [1986] 3 एस.सी.सी. 156, संदर्भित।

(8) वर्तमान मामले में, प्रत्यर्थी के खिलाफ 5.7.1983 के बाद से विभागीय कार्यवाही को अपास्त किया जाता है और परिणामी लाभों के साथ सेवा में वादी की पुनः नियुक्ति के लिए डिक्री की पुष्टि की जाती है, जो इस संशोधन के अधीन है कि यदि बैंक अधिकारियों का विचार है कि कई वर्षों की देरी के बावजूद जांच पूरी की जानी चाहिए, तो उनके लिए इसके साथ आगे कार्यवाही करने और इस निर्णय में न्यायालय के निर्देशों के अनुसार उस चरण से कार्यवाही में आगे कदम उठाने के लिए खुला होगा जहां यह 5.7.1983 को खड़ा था। [943 एफ-जी]

सिविल अपीलीय क्षेत्राधिकार: सिविल अपील सं. 3091/1985

(एस.ए. संख्या 1137/1984 में इलाहाबाद उच्च न्यायालय के निर्णय और आदेश

दिनांक 30.11.84 से।)

कपिल सिब्बल, (एन.पी.), श्री राजीव धवन, आर.के. गुप्ता, एच.शर्मा और सुश्री इंदु शर्मा, अपीलार्थी की ओर से ।

सतीश चंद्र, एम.सी. गोयल, के.पी. सिंह और एन.एन. शर्मा, प्रत्यर्थियों के ओर से।

न्यायालय का निर्णय इनके द्वारा दिया गया -

शर्मा, न्यायाधिपति

1. हमारे सामने मुख्य प्रश्न यह है कि क्या प्रादेशिक ग्रामीण बैंक अधिनियम, 1976 की धारा 3 के तहत एक अधिसूचना द्वारा स्थापित प्रादेशिक ग्रामीण बैंक भारत के संविधान के भाग III के प्रयोजनों के लिए "राज्य" है। विशेष अनुमति द्वारा यह अपील अपीलकर्ता बैंक के एक कर्मचारी प्रत्यर्थी सं.1 द्वारा एक मुकदमे से उत्पन्न हुई है जिसमें उसके विरुद्ध अनुशासनात्मक कार्यवाही की वैधता और उसमें पारित सेवा से उसकी बर्खास्तगी के आदेश को चुनौती दी गई है। विचारण न्यायालय ने मुकदमे का

फैसला सुनाया और अपील में अतिरिक्त जिला न्यायाधीश द्वारा और दूसरी अपील में उच्च न्यायालय द्वारा डिक्री की पुष्टि की गई।

2. संक्षेप में बताए गए तथ्य, उन विवरणों को छोड़कर जो इस निर्णय के उद्देश्य के लिए प्रासंगिक नहीं हैं, एक संक्षिप्त दिशा में हैं। 1981 में प्रत्यर्थी नं.1 को एक लंबे आरोप पत्र के साथ पेश किया गया था, जिसमें कई आरोप थे, जिनमें से कुछ गंभीर थे, और उसे अपना कारण बताने के लिए बुलाया गया था। आरोप-पत्र में बड़ी संख्या में दस्तावेजों का उल्लेख किया गया था और प्रतिवादी ने अपना जवाब दाखिल करने के उद्देश्य से उनकी प्रतियों की मांग की थी। अपीलार्थी के अनुसार प्रत्यर्थी को दस्तावेजों का निरीक्षण करने के लिए कई अवसर दिए गए थे (कुछ को छोड़कर जिनके संबंध में विशेषाधिकार का दावा किया गया था), लेकिन प्रत्यर्थी ने उनका लाभ जांच को हतोत्साहित करने के उद्देश्य से नहीं उठाया। उच्च न्यायालय के अनुसार, अपीलार्थी द्वारा दिए गए अवसर पर्याप्त नहीं थे। कुछ परिस्थितियों के कारण कुछ समय के लिए जांच में कोई प्रगति नहीं हो सकी। 5.7.1983 को कार्यवाही के लिए सौंपे गए एक नए जांच अधिकारी ने मामले को अपने हाथ में लिया, जब प्रत्यर्थी नं.1 तर्क दिया कि उसे अपना लिखित बयान दाखिल करने में सुविधा के लिया संबंधित दस्तावेजों की जांच करने का पर्याप्त अवसर दिया जाना चाहिए। अपचारी कर्मचारी के आचरण की व्याख्या और 5 जुलाई और उसके बाद की तारीखों पर जांच अधिकारी द्वारा अपनाया गया दृष्टिकोण के संबंध में पक्षों के मध्य गंभीर विवाद है, लेकिन हम इस पहलू पर विस्तार से विचार करना आवश्यक नहीं समझते हैं क्योंकि हम उच्च न्यायालय के इस विचार से सहमत हैं कि चूंकि प्रत्यर्थी को दस्तावेजों की जांच करने का पर्याप्त अवसर नहीं दिया गया था, इसलिए वह अपना कारण बताने और प्रभावी ढंग से अपना बचाव करने में असमर्थ था।

3. 5 जुलाई, 1983 का आदेश पारित होने के तुरंत बाद प्रतिवादी द्वारा वाद दायर किया गया था। अनुशासनात्मक कार्यवाही, हालाँकि, एक पक्षीय रूप से आगे बढ़ी और अंततः प्रत्यर्थी को सेवा के बर्खास्त कर दिया गया। वाद पत्र में संशोधन द्वारा, प्रत्यर्थी को बर्खास्तगी आदेश को भी चुनौती देने की अनुमति दी गई।

4. प्रत्यर्थी ने दावा किया है कि यह बैंक अधिकारियों का प्रतिशोधी रवैया था जिसके कारण उसके खिलाफ अनुशासनात्मक कार्यवाही की शुरुआत हुई और उसके निलंबन का आदेश, और प्राकृतिक न्याय के सिद्धांतों के गंभीर उल्लंघन से जांच दूषित हो गई है। इन आरोपों को नकारने के अलावा, अपीलकर्ता बैंक ने कहा कि पक्षकारों के बीच स्वामी और सेवक के संबंधों की प्रकृति को ध्यान में रखते हुए, प्रत्यर्थी को फिर से बहाली की डिक्री अवैध थी और जैसा कि मुकदमा बनाया गया था वह सम्पोशनीय नहीं था। यह मानते हुए भी कि प्रत्यर्थी गुण-दोष के आधार पर अपने मामले को साबित करता है, उसका बचाव हर्जाने के लिए एक वाद होगा। वैकल्पिक रूप से, यदि प्रत्यर्थी को एक लोक सेवक के रूप में अभिनिर्धारित किया जाता है ताकि वह सेवा में पुनः नियुक्ति के लिए अनुरोध कर सके, तो यू.पी. लोक सेवाएं (न्यायाधिकरण) अधिनियम, 1976 के प्रावधानों को देखते हुए मुकदमे को सम्पोशनीय नहिहोने के कारण खारिज कर दिया जाना चाहिए। प्राकृतिक न्याय के सिद्धांतों के उल्लंघन से संबंधित आरोपों का भी कड़ा खंडन किया गया है।

5. दोनों पक्षों का प्रतिनिधित्व करने वाले विद्वान अधिवक्ताओं ने हमें तथ्यों में गहराई से जाने के लिए आमंत्रित किया, लेकिन हमने ऐसा करने से इनकार कर दिया, क्योंकि नीचे दिए गए तीनों न्यायालयों ने मामले पर बहुत विस्तार से विचार किया है और हम उच्च न्यायालय से सहमत हैं कि जांच अधिकारी को प्रतिवादी को अपना उत्तर तैयार करने के उद्देश्य से प्रासंगिक दस्तावेज की जांच करने के लिए पर्याप्त अवसर देना चाहिए था। ऐसा नहीं करने पर, कार्यवाही में आगे के आदेशों को दूषित माना

जाना चाहिए। हालाँकि, हम प्रत्यर्थी के विद्वान अधिवक्ता श्री सतीश चंद्र के इस तर्क से सहमत नहीं हैं कि अपनी शुरुआत से ही पूरी कार्यवाही को अवैध बताते हुए अपास्त किया जाना उचित है।

6. अब वाद की सम्पोशिनयता से संबंधित मुद्दा बना हुआ है। जहाँ तक उत्तर प्रदेश लोक सेवाएं (न्यायाधिकरण) अधिनियम, 1976 के प्रावधानों का संबंध है, वे पूरी तरह से लागू हैं। अधिनियम की धारा 6 उत्तर प्रदेश राज्य और कुछ अन्य प्राधिकरणों के खिलाफ एक ऐसे व्यक्ति द्वारा मुकदमा दायर करने के लिए सिविल न्यायालय की अधिकारिता को प्रतिबंधित करता है जो अधिनियम की धारा 2(बी) में परिभाषित "लोक सेवक" है या रहा है। जो निम्नलिखित शब्दों में है:

"2. परिभाषाएँ। इस अधिनियम में

(अ)

(ख) "लोक सेवक" से सेवा या भुगतान के लिए प्रत्येक व्यक्ति अभिप्रेत है।

(i) राज्य सरकार; या

(ii) एक स्थानीय प्राधिकारी जो छावनी बोर्ड नहीं है;

या

(iii) राज्य सरकार द्वारा स्वामित्व या नियंत्रित कोई अन्य निगम (इसमें कंपनी अधिनियम 1956 के धारा 3 में परिभाषित कोई भी कंपनी शामिल है जिसमें भुगतान की गई शेयर पूँजी का पचास प्रतिशत से कम हिस्सा राज्य सरकार के पास नहीं है) लेकिन इसमें शामिल नहीं है-

(1) किसी अन्य कंपनी के वेतन या सेवा में कोई व्यक्ति; या

(2)(क) अखिल भारतीय सेवाओं या अन्य केंद्रीय सेवाओं का सदस्य;"

अपीलार्थी प्रथम बैंक उपरोक्त परिभाषा के दायरे में नहीं आता है। इसका गठन प्रादेशिक ग्रामीण बैंक अधिनियम, 1976 की धारा 3 द्वारा प्रदत्त शक्ति के प्रयोग में किया गया था। इसे सिंडीकेट बैंक, एक राष्ट्रीयकृत बैंक, द्वारा प्रायोजित किया गया है। हालांकि बैंक की कुल पूंजी का पंद्रह प्रतिशत उत्तर प्रदेश राज्य द्वारा योगदान किया गया है, लेकिन इसके पास कोई नियंत्रण शक्ति नहीं है, और यू.पी अधिनियम की धारा 2(बी) में उल्लिखित कोई भी शर्त पूरी नहीं होती है। वादी-प्रत्यर्थी, इस प्रकार, यू पी अधिनियम में प्रयुक्त अभिव्यक्ति के सीमित अर्थ के भीतर एक "लोक सेवक" नहीं है और नीचे दी गई अदालतें यू. पी. अधिनियम द्वारा बार की बचाव याचिका को खारिज करने में सही हैं।

7. अपीलार्थी की ओर से मुख्य मुद्दा यह है कि संविधान के भाग III के प्रयोजनों के लिए बैंक को 'राज्य' नहीं माना जा सकता है, और इसलिए प्रत्यर्थी को फिर से बहाली की डिक्री अवैध है। विद्वान अधिवक्ता ने अपने तर्क के समर्थन में कई निर्णयों का हवाला दिया, लेकिन हम इस पहलू पर इस न्यायालय की आधिकारिक घोषणाओं को देखते हुए उन सभी को संदर्भित करना आवश्यक नहीं मानते हैं। अजय हसिया और अन्य बनाम खालिद मुजीब शेरावर्दी और अन्य, [1981] 1 एस.सी.सी. 722 में यह एक संविधान पीठ द्वारा अभिनिर्धारित किया गया था कि कोई प्राधिकारी संविधान के अनुच्छेद 12 में राज्य की परिभाषा के अंतर्गत आता है या नहीं, यह निर्धारित करने के लिए प्ररिक्षण यह है कि क्या वह सरकार का एक साधन या एजेंसी है। जाँच इस बारे में नहीं होनी चाहिए कि न्यायिक व्यक्ति का जन्म कैसे हुआ है, बल्कि यह होनी चाहिए कि इसे अस्तित्व में क्यों लाया गया है। इससे पहले, यह अपरिपक्व है कि प्राधिकारी किसी कानून द्वारा बनाया गया है या किसी कानून के तहत। न्यायालय ने उस मामले में एसोसिएशन के ज्ञापन और नियमों की जांच करने के बाद सोसाइटी को, जो जम्मू और कश्मीर सोसायटी पंजीकरण अधिनियम के तहत पंजीकृत थी, अनुच्छेद

12 के अर्थ के तहत एक 'प्राधिकारी' माना। यह बताया गया कि सोसायटी की संरचना में प्रतिनिधियों का वर्चस्व था केंद्र सरकार और कई राज्यों की सरकारों द्वारा केंद्र सरकार की मंजूरी से नियुक्त; खर्चों को पूरा करने की लागत केंद्र सरकार और जम्मू और कश्मीर की सरकार से आती थी; सोसायटी द्वारा बनाए जाने वाले नियमों को दोनों सरकारों की पूर्व मंजूरी की आवश्यकता थी; खातों को उनकी जांच के लिए दोनों सरकारों को प्रस्तुत किया जाना था; सोसाइटी को केंद्र सरकार की मंजूरी से राज्य सरकार के निर्देशों का पालन करना था; और इस प्रकार राज्य और केंद्र सरकार का नियंत्रण गहरा और व्यापक था। सोसायटी के सदस्यों की नियुक्ति और उन्हें हटाने के संबंध में प्रावधानों और बोर्ड ऑफ गवर्नर्स के गठन और शक्तियों का भी उल्लेख किया गया। इस निर्णय के आलोक में अपीलार्थी बैंक के संबंध में प्रासंगिक परिस्थितियों की जांच से यह अटूट निष्कर्ष निकलता है कि यह केंद्र सरकार का एक साधन है। जैसा कि पूर्व में कहा गया है, बैंक की स्थापना प्रादेशिक ग्रामीण बैंक अधिनियम, 1976 के प्रावधानों के तहत की गई थी। अधिनियम की प्रस्तावना जो नीचे उल्लिखित है, स्पष्ट रूप से इंगित करती है कि प्रादेशिक ग्रामीण बैंकों की स्थापना उन कर्तव्यों के निर्वहन के लिए की गई है जो मूल रूप से एक कल्याणकारी राज्य की जिम्मेदारी हैं।

"ग्रामीण क्षेत्रों में कृषि, व्यापार, वाणिज्य, उद्योग तथा अन्य उत्पादन कार्यों के विकास के प्रयोजनार्थ प्रत्यय तथा अन्य प्रसुविधाएं, विशिष्टतया छोटे और सीमांत कृषकों, कृषि श्रमिकों, कारीगरों तथा छोटे उद्यमियों को, प्रदान करके ग्रामीण अर्थ-व्यवस्था का विकास करने की दृष्टि से प्रादेशिक ग्रामीण बैंकों के निगमन, विनियमन और परिसमापन का तथा उनसे सम्बन्धित और उसके आनुषंगिक विषयों का उपबन्ध करने के लिए अधिनियम।"

धारा 3 में कहा गया है कि यदि किसी प्रायोजक बैंक द्वारा अनुरोध किया जाता है, तो केंद्र सरकार एक प्रादेशिक ग्रामीण बैंक की स्थापना कर सकेगी। वर्तमान मामले

में प्रायोजक बैंक एक राष्ट्रीयकृत बैंक था, जिसे केंद्र सरकार के नियंत्रण में माना गया है और इसलिए, संविधान के अनुच्छेद 12 की परिभाषा के अंतर्गत आता है। ग्रामीण बैंक की शेयर पूंजी को प्रायोजक बैंक द्वारा अभिदान किया जाना है जिसका कर्तव्य ग्रामीण बैंक के व्यक्ति को प्रशिक्षित करना और प्रारंभिक चरण के दौरान प्रबंधकीय और वित्तीय सहायता प्रदान करना है। ऐसे समय की अवधि केंद्र सरकार द्वारा बढ़ाई जा सकती है। केंद्र सरकार के पास रिजर्व बैंक और प्रायोजक बैंक के साथ समझौते में अधिकृत पूंजी को बढ़ाने या कम करने की शक्ति भी निहित है। ग्रामीण बैंक द्वारा जारी पूंजी की सदस्यता लेने का भार केंद्र सरकार, प्रायोजक बैंक और राज्य सरकार के बीच विभाजित है, उनके संबंधित शेयर पचास प्रतिशत, पैंतीस प्रतिशत और पंद्रह प्रतिशत हैं। ग्रामीण बैंक के मामलों का सामान्य पर्यवेक्षण, निर्देशन और प्रबंधन निदेशक मंडल में निहित होता है, जिसमें केंद्र सरकार द्वारा नामित दो निर्देश होते हैं, रिजर्व बैंक द्वारा अपने एक अधिकारी में से एक निदेशक नामित किया जाता है, नेशनल बैंक द्वारा अपने एक अधिकारी में से एक निदेशक नामित किया जाता है, प्रायोजक बैंक द्वारा अपने अधिकारियों में से दो निदेशक नामित किए जाते हैं और शेष दो निदेशक राज्य सरकार द्वारा अपने अधिकारियों में से नामित किए जाते हैं। रिजर्व बैंक, राष्ट्रीय बैंक और प्रायोजक बैंक पर केंद्र सरकार के साथ संबंधों और नियंत्रण को देखते हुए, केंद्र सरकार को ग्रामीण बैंक पर प्रभावी नियंत्रण मिलता है। ग्रामीण बैंक का मुख्य कार्यालय केंद्र सरकार के निर्देशों के अनुसार स्थित होना चाहिए। ग्रामीण बैंक के अधिकारियों और अन्य कर्मचारियों का पारिश्रमिक केंद्र सरकार द्वारा निर्धारित किया जाना है जैसा कि धारा 17 में संकेत दिया गया है। ग्रामीण बैंक के कार्यों को पूरी तरह से निपटाने का प्रयास किए बिना, 18(2) अपने कर्तव्य के अंतर्गत निम्नलिखित प्रकार के व्यवसाय का उल्लेख करता है:

“18.(1)

(2)

(क) विशिष्टतया छोटे और सीमांत कृषकों तथा कृषि श्रमिकों को, चाहे अलग-अलग या समूह में, और सहकारी सोसाइटियों को, जिनके अन्तर्गत कृषि विपणन सोसाइटियां, कृषि प्रसंस्करण सोसाइटियां, सहकारी कृषिकर्म सोसाइटियां, प्राथमिक कृषि प्रत्यय सोसाइटियां या कृषक सेवा सोसाइटियां भी हैं, कृषि प्रयोजनों या कृषि संक्रियाओं या उनसे सम्बन्धित अन्य प्रयोजनों के लिए उधार और अग्रिम देना;

(ख) प्रादेशिक ग्रामीण बैंक के सम्बन्ध में अधिसूचित क्षेत्र के भीतर विशिष्टतया कारीगरों, छोटे उद्यमियों और कम साधन वाले ऐसे व्यक्तियों को, जो व्यापार, वाणिज्य या उद्योग या अन्य उत्पादन कार्यों में लगे हुए हों, उधार और अग्रिम धन देना।“

यह स्पष्ट है कि ग्रामीण बैंकों की स्थापना करके केंद्रीय सरकार उनके माध्यम से संविधान के भाग IV के अनुच्छेद 38 और 48 के तहत अपने दायित्वों का निर्वहन करती है। यह सुनिश्चित करने के लिए कि ग्रामीण बैंकों की स्थापना का उद्देश्य पूरी तरह से प्राप्त हो, इस अधिनियम की धारा 20 की उप-धारा (2) ने संसद के दोनों सदनों को भी इसमें निम्नलिखित शब्दों में शामिल किया है :

"(2) केन्द्रीय सरकार, लेखा परीक्षकों की प्रत्येक रिपोर्ट और प्रत्येक प्रादेशिक ग्रामीण बैंक के कार्यकरण और कामकाज की बाबत रिपोर्ट, प्राप्त होने के पश्चात् यथाशीघ्र, संसद् के प्रत्येक सदन के समक्ष रखवाएगी।“

धारा 24 ए द्वारा, प्रायोजक बैंक को समय-समय पर ग्रामीण बैंकों की प्रगति की निगरानी करने और संबंधित कदम उठाने और निरीक्षण, आंतरिक लेखा परीक्षा आदि करने की आवश्यकता होती है। धारा 29 के अनुसार नियम बनाने की शक्ति केंद्र

सरकार में निहित है और निर्देश देने की केंद्र सरकार की शक्ति का उल्लेख धारा 24 में किया गया है। जिसे नीचे उद्धृत किया गया है:

"24(1) प्रादेशिक ग्रामीण बैंक अपने कृत्यों के निर्वहन में ऐसे विषयों के बारे में, जो नीति और लोकहित से सम्बद्ध हैं, ऐसे निर्देशों का अनुसरण करेगा जो केन्द्रीय सरकार रिजर्व बैंक से परामर्श करके दे ।

(2) यदि यह प्रश्न उठता है कि ऐसा कोई निर्देश नीति के ऐसे विषय से संबद्ध है जिसमें लोकहित अन्तर्ग्रस्त है तो उस पर केन्द्रीय सरकार का विनिश्चय अन्तिम होगा।"

अधिनियम के प्रावधान इस बात में कोई संदेह नहीं छोड़ते हैं कि प्रादेशिक ग्रामीण बैंक केंद्र सरकार के गहरे और व्यापक नियंत्रण में हैं और इसके साधन के रूप में स्थापित किए गए हैं और इसलिए, संविधान के अनुच्छेद 12 के भीतर 'राज्य' हैं।

8. विद्वान अधिवक्ता ने तर्क दिया कि भले ही अपीलार्थी बैंक को राज्य माना जाये, न्यायालय प्रत्यर्थी की सेवा में पुनः बहाली के लिए डिक्री पारित करके उस पर सेवाएं देने के लिए मजबूर नहीं कर सकती हैं। जो कुछ भी किया जा सकता है वह यह है कि उचित रूप से गठित वाद में मुआवजे के तरीके में राहत दी जाए। हम तर्क में कोई योग्यता नहीं पाते हैं। विद्वान अधिवक्ता ने केंद्रीय अंतर्देशीय जल परिवहन निगम लिमिटेड और एक अन्य बनाम ब्रोजो नाथ गांगुली और एक अन्य में रिपोर्टेड [1986] 3 एस.सी.सी. में निर्णय के पैराग्राफ 103 में निम्नलिखित टिप्पणियों पर भरोसा किया:

“इसलिए, प्रतिस्पर्धा करने वाले प्रत्यर्थी एक घोषणा के लिए एक सिविल मुकदमा दायर कर सकते थी की उनकी सेवा की समाप्ति इस आधार पर कानून के विपरीत थी कि उक्त नियम 9(i) शून्य था। हालाँकि, इस तरह के वाद में, उन्हें गलत तरीके से सेवा समाप्त करने के लिए एक घोषणा और संभवतः हर्जाना मिल सकता था, लेकिन सिविल

न्यायालय बहाली का आदेश नहीं कर सकती थी क्योंकि यह व्यक्तिगत सेवा के अनुबंध के विशिष्ट प्रदर्शन को मंजूरी देने के बराबर होता। चूँकि निगम "राज्य" है, इसलिए उन्होंने संविधान के अनुच्छेद 226 के तहत रिट याचिका दायर करने का कहीं अधिक प्रभावी उपाय अपनाया।"

अपीलार्थी की मदद करने के बजाय, टिप्पणियाँ सही स्थिति को स्पष्ट करती हैं जो विद्वान अधिवक्ता के तर्क के बिल्कुल विपरीत है।

9. नतीजतन, प्रत्यर्थी के खिलाफ 5.7.1983 के बाद से विभागीय कार्यवाही को अपास्त किया जाता है और परिणामी लाभों के साथ सेवा में वादी की पुनः नियुक्ति के लिए डिक्री की पुष्टि की जाती है। यदि बैंक अधिकारियों का विचार है कि कई वर्षों की देरी के बावजूद जांच पूरी की जानी चाहिए, तो उनके लिए इसके साथ आगे कार्यवाही करने और इस निर्णय में न्यायालय के निर्देशों के अनुसार उस चरण से कार्यवाही में आगे कदम उठाने के लिए खुला होगा जहां यह 5.7.1983 को खड़ा था, लेकिन उन्हें प्रतिवादी को ऐसा करने का अपना इरादा इंगित करना चाहिए और उसे प्रासंगिक दस्तावेजों की प्रतियां भी देनी चाहिए। यदि उनका विचार है कि कोई विशेष दस्तावेज गोपनीय प्रकृति का है और उसकी एक प्रति प्रत्यर्थी को नहीं सौंपी जा सकती है, तो वे प्रत्यर्थी को लिखित रूप में संकेत दे सकते हैं और यह जांच करने के लिए जांच अधिकारी के लिए खुला होगा कि क्या ऐसी प्रति को अस्वीकार करना प्राकृतिक न्याय के सिद्धांतों का उल्लंघन होगा। बैंक प्रत्यर्थी को कारण बताने के लिए बुलाए जाने से पहले अपने पद पर शामिल होने और उसके अन्य लाभ प्राप्त करने की भी अनुमति देगा। संकेतित संशोधनों के अधीन अपील के तहत डिक्री की पुष्टि की जाती है। पक्षकारों को इस न्यायालय का अपना खर्च स्वयं वहन करने का निर्देश दिया जाता है।

आर.एस.एस

यह अनुवाद आर्टिफ़िशियल इंटेलिजेंस टूल "सुवास" के जरिये अनुवादक की सहायता से किया गया है ।

अस्वीकरण - इस निर्णय का अनुवाद स्थानीय भाषा में किया जा रहा है, एवं इसका प्रयोग केवल पक्षकार इसको समझने के लिए उनकी भाषा में कर सकेंगे एवं यह किसी अन्य प्रयोजन में काम नहीं ली जायेगी। सभी आधिकारिक एवं व्यवहारिक उद्देश्यों के लिए उक्त निर्णय का अंग्रेजी संस्करण ही विश्वसनीय माना जायेगा एवं निष्पादन एवं क्रियान्वयन में भी उसी को उपयोग में लिया जायेगा।